Chapter-7

सप्तम अध्याय

उपसंहार

पंजाब और गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी का अध्ययन कर चुकने के पश्चात् हम इस निषकर्ष पर पहुँचे हैं कि पंजाब और गुजरात के अंचल में पोषित यह भाव धारा भारत व्यापी संत परंपरा की ही एक अभिन्न कड़ी है , जिसने उत्तर तथा दक्षिण के दो सीमा क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए एकत्व की साधना में ज्ञान का दीप जलाया । उत्तर तथा दक्षिण भारत के संतमत की वे सभी विशेषताएं जो हमें कबीर नानक व नामदेव आदि में मिलती है। गुजरात की ज्ञान मार्गी धारा के अन्तरगत अखा , धीरा , भोजा , और प्रीतम तथा पंजाब की ज्ञानमार्गी धारा को नानक के बाद गुरू अंगद , गुरू अमरदास , रामदास , अर्जुनदेव , हरगोविन्द , हरराय , हरकृष्णराय , तेगबहादुर , गोविन्दसिंह , वीरवन्दा बहादुर प्रभृति संतो में सहज ही विद्यमान है। इन संतो नें प्रत्यक्ष अनुभव तथा सत्यान्वेषण सद्‌गुरू -- महत्व प्रतिपादन नाम स्मरण तथा बाह्याडंबर की व्यर्थता का उपदेश उस समय पुनः दिया जब कि उत्तर तथा दक्षिण की भक्ति भावना समय के प्रभाव से धीरे-- धीरे धूंधली होती जा रही थी। सत्रहवीं शती का उत्तरी भारत जब निर्गुण से सगुण की ओर अभिमुख हो रहा था , जिसके परिवेश में रीतिकालीन --रगीनियॉ स्पष्ट रूप सेझलक रही थी । उस समय ज्ञान , वैराग्य एवं भक्ति से समन्वित गुजरात की यह मध्ययुगीन त्रिधारा आध्यात्मवाद का अमर संदेश दे रही थी । उत्तरी भारत के कवि खण्डन मण्डन में व्यस्त थे । जबकि पंजाब और गुजरात के ऊर्ध्वगामी कवि आध्यत्मिक उड़ान के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे । उत्तरी संत साधना प्रायः सामाजिक और वैयक्तिक समस्याओं में उलझी जबकि पंजाबी तथा गुजराती संतो की साधना सामाजिक चेतना के बीच आध्यात्मिकता का संचार करनेमें निमग्न रही । यही कारण है कि पंजाब तथा गुजरात के साहित्य के इतिहास में भक्ति तथा आधुनिक काल के बीच रीतिकाल जैसी कोई स्पष्ट प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती ।

ज्ञानरूपी दीपक जिसे कबीर ने जलाया तथा जायसी , नानक रैदास तथा मीरा जैसे संतो के स्नेह घृत से आलोकित हो उठा था । वह रीति काल में धीरे–धीरे क्षीण होता जा रहा था , उस समय पुनः गुजरात के व पंजाब के ज्ञानी संतों नें उसे अपने स्नेह से सींचकर प्रज्वलित किया था । इन संतो ने साधना के उच्च शिखर पर पहुँच कर जहाँ एक ओर गुजरात की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना को जीवित रखा है । वहाँ दूसरी ओर इन्होंनें अपनी हृदय स्पर्शी वाणी द्वारा सहित्य तथा संगीत के प्रति भी अगाध प्रेम का परिचय भी दिया है ।

संत वाणी का सही रूप से मूल्यांकन करते हुए प्रसंगवश संतसाहित्य के संबंध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओ का उल्लेख तथा निराकरण भी आवश्यक प्रतीत होता है । विद्वानों का एक वर्ग संत साहित्य को साहित्य के अर्न्तगत स्थान देने के लिए भी तैयार नहीं था । आ. रामचन्द्र शुक्ल , मिश्रबन्धु , बाबू श्याम सुन्दर दास , पीतांबर दत्त बड़थ्वाल जैसे महानुभावों के अध्ययन एवं अनुशीलन के परिणाम स्वरूप इस भ्रान्ति को एक सीमा तक नकारा गया , परंतु आज विद्वानो के एक वर्ग नें इसे संतकवियों की रचनाएं मानकर काव्य के अर्न्तगत स्थान न देकर शास्त्र अथवा नीति ग्रन्थों के अर्न्तगत ही उन्हें रखा है । उदाहरणार्थ आ. सीताराम चतुर्वेदी जी के कथनानुसार – ' समूची संत वाणी न तो साहित्य ही है , और न काव्य ही । वह पूर्णतः एकांकी ठेठ पारिभाषिक शब्दों से लदी हुई अस्पष्ट उक्तियों का समूह है –1। ' संत कवियों की समस्त रचनाएं शास्त्र अथवा नीति ग्रन्थों के अर्न्तगत तो आ सकती है , परन्तु काव्य के अर्न्तगत नहीं । संतों की वाणी में प्रसंगवश उपमा , रूपक , दृष्टान्त आ जाने से अथवा सूक्ति का चमत्कार आ जाने मात्र से ही वह साहित्य के कोटि में नहीं आ सकती है। उसके काव्यत्व या साहित्य की स्थापना के लिए मूर्त आलंबन का होना आवश्यक है या आलंबन तत्व संपूर्ण संतसाहित्य में स्वभावतः अनुपस्थित है जिससे इसमें कहीं भी न तो काव्यानंद

ही प्राप्त होता है और न रस की तन्मयता ही आ सकती है । आ. चतुर्वेदी जी ने इस कथन के अन्तर्गत संतवाणी पर सामान्यतः दो आक्षेप किए है । 1– दार्शनिकता , 2– पूर्व आलंबन का अभाव । चतुर्वेदी जी के ये आक्षेप निराधार तो नहीं परन्तु भारतीय साहित्य की यह एक मूलभूत विशेषता रही है कि उसे दर्शन से पूर्णतया विच्छिन्न नहीं किया जा सकता । यह बात अवश्य है कि साहित्य में दार्शनिकता एक समुचित एवं संतुलित अनुपात मेंरहे जहॉ यह काव्य के उपर हावी हो जाती है वहॉ निश्चय ही कविता न रह कर दार्शनिक तथ्यों की छनदोवद्ध अभिव्यक्ति मात्र प्रतीत होती है। संत काव्य का कुछ अंश दार्शनिकता से बोझिल अवश्य है किन्तु इससे समूची संतवाणी के संबंध में इस प्रकार का आक्षेप करना उचित प्रतीत नहीं होता। कबीर,रैदास,दादू,सुन्दरदास आदि संतों की वाणी का कुछ अंश निश्चय ही उत्कृष्ट काव्य की कोटि में रखा जाने योग्य है। इसे न केवल संत–साहित्य के प्रशंसको ने अपितु सहृदय कवि एवं विवेचको ने भी स्वीकार किया है ,संतो का यह रागात्मक साहित्य जो मात्र सिद्धान्त परक,नीति विषयक अथवा उपदेश –पुर्ण नहीं है, निश्चय ही साहित्य के अन्तर्गत स्थान पाने योग्य है। इन संतो का आचार्य चतुर्वेदी जी भी साहित्य की कोटि से बहिष्कृत नही कर पाये हैं।

कबीर आदि ज्ञानमार्गी संतो तथा सगुण भक्तों की भाव योजना में अंतर केवल इतना है कि एक अनुभूति साकार एवं ससीम है जबकि दूसरी निराकार एवं असीम। ब्रह्मको आलम्बन मान व्यक्त की गई ऐसी अनुभूतियॉ भक्ति , अद्‌भुत, एवं शान्त रसों की अवतारणा में काव्यात्मक सिद्ध हुई है।

अकल कला खेलत नर ज्ञानी,
जैसेहि नाव हिरे फिरे दसो दिस,
ध्रुव तारे पर रहत निशानी।।– अखा।

साधो ,यह तन ठाठ तम्बुरे का,ऐंचत तार भरोरत खूँटी,
निकसत राग हजूरे का ।– कबीर।–

उनमें श्रृगाांर है और वह भी समग्र रागात्मक वृत्तियों को झकझोर देनेवाला, किन्तु वासना में पूर्णतः निर्लिप्त। कबीर,नानक,दादू,अखा आदि संतों की बाणी विद्यापति तथा जयदेव आदि से इसी जगह अलग हो जाती है। वस्तुतः साहित्य को यदि हम लोकमंगल कारी अनुभूति कल्पना, अभिव्यंजना और चिन्तन का मन्दिर कहें तो इन संतों की वाणी निश्चित रुप से साहित्य के मन्दिर में अर्चना की सामग्री हैं। इससे तात्पर्य कमवल यही है कि संत साहित्य की परीक्षा एक मात्र उपादेयता अथवा लोकहित की भावना के आधार पर ही न की जाकर ऐसे निष्कर्ष पर की जानी चाहिये जिस पर उसके दोषों के साथ–साथ उसके गुणों का भी मुल्यांकन हो सके। इस दृष्टि से हिन्दी में कबीर ,नानक एवं गुरु परम्परा,सुन्दरदास तथा गुजरात में दादू , अखा, प्रीतम, वस्ता,मनोहर, छोटम,रवि साहब आदि सन्तो की वाणी के कुछ अंश अवश्य उत्कृष्ट साहित्य की कोटि में सीन प्राप्त करेगे।

प्रस्तुत गवेषणा के द्वारा पंजाब तथा गुजरात के ऐसे अनेक हिन्दी सेवी संतों तथा उनकी बानियों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया गया है, जिनकी गणना कबीर,नानक,नामदेव तथासुन्दरदास जैसे उच्चकोटि के सन्तों तथाउनकी 'बानी' के साथ की जा सकती है गुजरात के सन्तों में दादू के बाद अखा का व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है जिसकी वाणी ने अज्ञान की अंधकारपूर्ण घाटियों में ज्ञान का प्रकाश फैलाया और कर्मकान्डो के चक्कर में भ्रमित सम्पूर्ण मानव जाति को अनुभव के आधार पर आत्मा को खोजने का सन्देश दिया। अखा को वस्तुतः गुजरात का कबीर सम्बोधन दिया गया है। वेदान्त की भूमिका पर भी अखा ने कबीर की भाँति अपने विचार जगत को जिस भाव प्रवणता के साथ लोकग्राह एवं लोक भोग्य बनाया वह कम से कम मध्ययुगीन गुजरात के कवियों को आन्दोलित कर देता है। 17वी शती का पूरा युगखंड की इस ज्वलन्त भावधारा से परिपुष्ट हैं।

उत्तर के मध्यकालीन संतों की धार्मिक चेतना प्रायः हिन्दू–मुशलमान

उत्तर के मध्यकालीन संतो की धार्मिक चेतना प्रायः हिन्दु मुसलमान दो विभिन्न जातियों के संघर्षों में उद्भूत हुई और एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा में शामिल हो गई, परंतु गुजरात में इन दो जातियों के अलावा पारसी, यहुदी, इसाई जातियों का भी सुभग संयोग हुआ । इसके साथसाथ हिन्दु–मुस्लिम एकता की बात ही नहीं अपितु इससे भी ऊँचे उठकर सर्व धर्म समभाव का उदघोष सर्वप्रथम गुजरात के संत स्वामी प्राणनाथ ने किया। प्राणनाथ ने जिस पथ को प्रशस्त किया आधुनिक युग में उसी पर चलकर स्वामी विवेकानन्द तथा गॉधी जी जैसी विभुतियों ने "सर्वधर्म समभाव " एवं "वसुधैव कुटुंबकम् " का संदेश सम्पूर्ण विश्व को दिया ।

गुजरात के सूफी सन्तों की देन भी अपूर्व है इन्हों ने ' युसुफ–जुलेखा' एवं 'खूब तरंग'जैसी मसनवियों की रचना कर निश्चय ही हिन्दी के श्रेष्ठ मनस्वी साहित्य में अभिवृद्धि की है । 'गुजरी' की परम्परा को जीवित रखने के लिए इन संतों की साधना अपना निजी महत्व रखती है वस्तुतः दक्षिण की 'दक्खिनी' और गुजरात की 'गुजरी' में भाव तथा भाषा की अपूर्व साम्यता भी इस बात का संकेत करती है कि खड़ी बोली हिन्दी के आन्दोलन की ये क्षेत्रीय कड़ियॉ जो अब तक अज्ञात रही , भारत व्यापी आन्दोलन की ही विशिष्ठ एवं अभिन्न कड़ियॉ है । इन्हें जोड़कर देखने से स्पष्ट हो जाता है कि भारत की सांस्कृतिक एवं धार्मिक एकता को कायम रखने में इन भाषा श्रृंखलाओं का योगदान कितना महत्वपूर्ण रहा है । गुजरात के हिन्दी से ही सन्तो की देन इस प्रकार है –

1. भाषाकीय 2. साहित्यिक 3. सांस्कृतिक

1. भाषाकीय उपलब्धि :– प्रस्तुत अधिनिबन्ध में पंजाब व गुजरात से सम्पर्कित ऐसे प्रायः दो सौ संतों कि हिन्दी बानी का अनुशीलन किया गया हैं जिन्होंने अपनी प्रादेशिक भाषा के साथ–साथ हिन्दी के प्रति सहज ममता

प्रदर्शित की है । प्रतिभा सम्पन्न सन्तों ने हिन्दी में उच्च कोठि के ग्रन्थों की रचना की । 15वीं सदी से लेकर आजतक उनकी यह साधना निरन्तर गुढ होती गई है । हिन्दी के प्रति इन संन्तों की साधना प्रायः दो प्रकार की है –

1. प्रचारात्मक 2. सृजनात्मक

1. प्रचारात्मक साधना : –

लोक कल्याण की व्यापक भावना से अभिभूत गुजरात और पंजाब के सन्तों ने हिन्दी को अपनी वाणी का माघ्यम बनाया । अपनी वाणी के अंतर्गत इन्होंने हिन्दी का वह स्वरुप अपनाया जो व्यवहार जगत की भाषा में प्रचलित था । हिन्दी भाषा के प्रयोग में प्रादेशिकता का पुट इनकी निजी विशेषता है । भाषा की मूल प्रकृति ब्रज भाषा अथवा खड़ी बोली के अधिक निकट प्रतीत होती हैं किन्तु उसमें पंजाबी , गुजराती, मराठी, राजस्थानी, सिन्धी और कच्छी आदि भाषा के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है । जिस प्रकार कबीर , नानक की भाषा में केवल शब्द ही नही बल्कि अनेक भाषाओं के कारक चिन्ह और कियापद भी मिलते है उसी प्रकार पंजाब व गुजरात के संतों की भाषा भी वह पंचमेल खिचड़ी है, जिसमे लोक भाषा के आधार पर विविध प्रयोग किए गए है । इस प्रकार के विशिष्ट कारक एवं किया रुपों से समन्वित लोक भाषा के अनुरुप हिन्दी के विविध प्रयोग हिन्दी को उनकी अपूर्व देन है । पंजाबी–हिन्दी, गुजराती–हिन्दी, राजन्थानी–हिन्दी, मराठी–हिन्दी, सिन्धी–हिन्दी, और कच्छी–हिन्दी विशिष्ट भाषाकीय उपलब्धियाँ हैं । इनमें वर्णों के आराम, लोप और विपर्यय पाये जाते है । भाषा विद्वान की दृष्टि से इनका अध्ययन महत्वपूर्ण हैं हिन्दी को राष्ट्रव्यापी बनाने के लिए सन्तों की इस विविधरुपा भाषा के अंतर्गत एकरुपता खोजी जा सकती है । हिन्दी के इस व्यापक आन्दोलन में पंजाब और गुजरात के सन्तों ने जो ज्योति जलाई वह आज भी अपने प्रकाश से संसार को आलोकित करने में सक्षम है । गुजरात के सन्तों की साधना हिन्दी के प्रसार में मूक व अपूर्व है ।

2, सृजनात्मक साधना :–

पंजाब के सन्त कवियों की शताधिक हिन्दी कृतियों में से कुछ तो अवश्य ही संत साहित्य की अक्षय निधि सिद्ध होगी भाषा की दृष्टि से उच्च कोटी की रचना में नानक जी की जपुजी, प्रसिद्व ग्रंथ 'श्री गुरु ग्रंथ साहीब, 'असा दी बार' (जो ईश्वर की स्तुति के रुप में हे)। अमरदास जी की प्रसिद्व रचना 'आनंद' , गुरु अर्जुनदेवजी की सबसे प्रसिद्व रचना 'सुखमनी' चित्त को शान्त करने वाली है बावन अरतरी बारह मासा भी इन्ही की रचनाए हैं । गुरु गोविन्द सिंह जी का रचना का संग्रह 'दसवें पातशाह का ग्रन्थ' तथा विचित्र नाटक हैं । जबकि गुजरात के संत भाषा की दृष्टि से उच्चकोटि की रचनाओं में अखा कृत 'संत प्रिया और ब्रह्मलीला , रवि साहब कृत बोध–चिन्तामणि और ' राम गुंजार चिन्तामणि, प्रीतम कृत ब्रह्म गीता तथा साखी ग्रन्थ , अनुभवानंद रचित विष्णु पद वस्ताकृत साखी– ग्रन्थ रंगीलदास कृत रंगील सतसई , देवा साहब कृत कृष्ण सागर , राम सागर तथा हरि सागर कृष्ण दास रचित रघुवंशमणि ,यदुनंदन तथा ज्ञान गीता, नृसिंहाचार्य कृति नृसिंहवाणी विलास, समर्थ राम कुत 'ध्रुव चरित ' आदि प्रमुख कृतिया हैं ।

अर्वाचीन युग के संतो ने गद्य साहित्य भी लिखा हैं ,जिसका अधिकांश हिन्दी में उपलब्ध होता है। इन सन्तों ने हिन्दी गद्य रचनाए कर हिन्दी भाषा एवं गद्य साहित्य की अनन्य सेवा की है। इस प्रकार की रचनाए सम्प्रदायिक प्रचार– प्रसार एवं सिद्धान्त निरुपण के हेतु रची गई प्रतीत होती हैं । इस रुप में इनका साहित्यिक मुल्य के वजाय ऐतिहासिक मुल्य अधिक है।

2–साहित्यिक उपलब्धिः–

लोक मंगल विधायक संतों का ऐसा सत्साहित्य है जिसमें मानव के युग –युग के संस्कारों की संचित निधि है। साधना एवं विश्वास के बल पर ,जिसमें जीवन के अमर सत्य खण्डों कासंचय है और जिसमें युग के जर्जर प्राचीरों को

ढहाकर मुक्त वातावरण में विहरने का नवोम्मेष हैं। उत्तर भारत के संतों की भाँति पंजाब और गुजरात के संतों की वाणी में भी आत्म प्रतीत की उलट–अभिलाषा एवं ब्रह्मज्ञान की अदम्य भूख है। ज्ञान की घटाओं में इनका मनमयूर उन्मत हो उठता है। ज्ञानी का रुप ही इनका रुप है। इनकी वाणी स्वानुभूतिमूलक भुक्तभोगी आत्मा की ऐसी पुकार है, जिसमें शुष्क शास्त्र–ज्ञान की खिल्ली उड़ायी गयी हैं। गुजरात के संतों की यह एक निजी विशेषता है कि इन्होंने एकनिष्ट और एकान्तिक भाव से न तो निर्गुण की ही साधना की है और न सगुण के प्रति विरोध ही प्रगट किया है अतः इन्हें निर्गुण के बजाए ज्ञानमार्गी कहना अधिक श्रेयस्कर है। इनकी साहित्यिक देन निम्न अनुसार हैं।

1, विषयक एवं शै लीगत उपलब्धियॉं।
2, प्रतीक एवं रुपक योजना।
3, विशिष्ट काव्य–प्रकार।
4, छनद–वैशिष्ट्य।
5, संगीत तत्व।

विषयगत एवं शै लीगत उपलब्धियॉं :–

गुजरात और पंजाब के ज्ञानमार्गी सन्तों का विषय न तो सगुण–निगुण का खंडन–मंडन ही था औ र न हिन्दू–मुस्लिम के अन्तरायों को पाटना ही, बल्कि ज्ञान के प्रकाश में उस 'आतम' को खोजने का प्रयास हे जो कि सामाजिक रुढियों तथा धार्मिक बन्धनोंके बीच आबद्ध था। अखा, वस्ता, धीरा छोटम, प्रीतम सभी आध्यात्मिक उड़ान के कवि थे जिन्हों ने आचार्य गो डवाद के अजातवाद, शंकर के मायावाद तथा सूफियों के रहस्यवाद को पूरी तरह से आत्मसात किया था। वेदांत को पचाकर अखा ने जिस अज्ञातवाद की भाव मूलक व्याख्या की , वही उन्हें युग के बड़े से बड़े तत्व चिन्तकों में प्रस्थापित

कर देती हें । गुजरात के ऐसे तत्वगवेषकों ने किसी अटपटी शे`ली का प्रयोग न कर परम्परागत प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों शैलियों में ब्रह्म विषयक चर्चा की है । सन्त काव्य में इस प्रकार की कड़ग–बद्ध शे`ली हिन्दी को उनकी महत्वपूर्ण देन है।

ब्रह्म, जीव ओ`र जगत की चर्चा के पश्चात् हिन्दी से ही सन्तों ने पौराणिक कथाओं के आधार पर विशेषत : भागवत के आधार पर अनेक नवीन रचनाएँ की हे`। इसका कारण गुजरात की समृद्ध आख्यान परम्परा को भी माना जा सकता हें। जो कि एक लम्बी परम्परा मांडण से लेकर छोटम तक दिखायी देती हें। पो`राणिक कथाओं के साथ साथ ये गुरु तथा संत महिमा का गान करते हुए भी नहीं अघाते। मुकुन्द शुराली कृत 'कबीर चरित' ओ`र 'गोरक्ष चरित' महात्यमराम कृत 'महामहिमावली ' प्रीतमदास कृत 'भक्त नामावली' आदि रचनाओं में मात्र गुजरातके संतों की यश गाथा ही नहीं अपितु उनमें दक्षिण, उत्तर भारत ओ`र बंगाल के संतों का भी समावेश हुआ हे`। गुजरात के संतों द्वारा लिखी गयी ऐसी चरित गाथाओं में संकुचित क्षेत्रवाद अथवा सीमाबद्धता को कहीं भी स्वीकार नहीं किया गया। गुरु को इन्होंने बहुत ऊँचे स्तर से देखा हे` इसी लिए उस जीवन मुल, अवधुत, परमहंस, परमात्मा सतगुरु आदि संज्ञाओं से अभिहित किया हें।

प्रतीक एवं रुपक योजना :

सन्तों की हिन्दी वाणी वैराग्य जनित शुष्क वाणी न होकर जीवन की उल्लासपूर्ण अभिव्यक्ति हे`। ब्रह्म, जीव और जगत के निरुपण में इनकी वाणी सर्वत्र कल्पना, भावना एवं औचित्य के सबल प्रवेश से संयोजित है। अपनी वाणी को स्पष्ट भावमूलक एवं लोक–भोग्य बनाने के लिए इन्होंने जिन प्रतिकों की संयोजना की हे` वे प्रायः दो प्रकार के हें –

1, पारिभाषिक प्रतीक। 2, भावात्मक प्रतीक।

पारिभाषिक प्रतीक :– इस प्रकार के प्रतीकों में कुछ ऐसे सांकेतिक एवं

रुपात्मक प्रतीक हैं जो सन्त परम्परानुमोदित हैं किन्तु कुछ प्रतीक ऐसे भी हैं जो विशिष्ट प्रतीक हैं जिनका प्रयोग इन सन्तों ने अपने ढंग से किया हैं इस प्रकार के प्रतीकों के साथ साथ इन्होंने कबीर की भाँति कुछ नवीन शब्द भी गढें हैं जैसे 'सोहागन' के आधार पर 'दोहागन'।

रुपकात्मक प्रतीकों में यद्यपि संधा भाषा का प्रयोग कम मिलता हैं, फिर भी सांग रुपकों की संयोजना में ये सन्त सिद्धहस्त हैं। 'ज्ञान कटारी', 'ज्ञान घटा', भजन भड़ाका', 'तन तंबूरा' और 'ज्ञान हुक्का' ऐसे ही सांग रुपक है जिनमें इनकी कल्पना शक्ति एवं चमत्कार बृत्ति का भी पूर्ण परिचय मिल जाता हैं।

भावात्मक प्रतीक :— संतवाणी में भावात्मक प्रतीकों की योजना सबसे अधिक हुई हैं। ऐसे प्रतीकों को प्राप्त करने के लिए इन संतों को अन्यत्र भटकना नहीं पडा हैं अपितु लोक जीवन से ही चयन किए गये ये सभी घरेलू एवं सामान्य प्रतीक हैं जो सहज ही हृदय को स्पर्श कर लेते हैं। गुजरात व पंजाब के संतों द्वारा योजित ऐसे भावमूलक प्रतीक प्रायः तीन प्रकार के है—

अ) रहस्यमूलक भावात्मक प्रतीक।

क) प्राकृतिकमूलक भावात्मक प्रतीक।

ब) लोकव्यवहारमूलक दाम्पत्य प्रतीक।

संगीत तत्व :—

संगीत के क्षेत्र में सन्तों की यदि कोई सबसे बडी देन हैं तो वह घरों में गूँजने वाली लोक धून की पकड़, जिसे इन्होंने देशी रागिनी के नाम से अभिहित किया हैं। इस रुप में सन्तों का साहित्य लोकगीत के अधिक निकट हैं और शास्त्रीय संगीत के बन्धनों से मुक्त विविध देशियों में रचा गया हैं इस प्रकार की गेय देशियाँ संगीत की अमिट निधि हैं जिसे सन्तों ने सहज रुप में इसे लोकवाणी में उतार दिया हैं।

सांस्कृतिक देन :—

सन्तों की सांस्कृतिक देन का मूल्यांकन करते हुए डा. अम्बाशंकर नागर ने

उचित ही कहा है कि 'भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है'। इस समन्वय संस्थापन का बहुत कुछ श्रेय मध्यकालीन सन्तों को है, इन संतों ने देश के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँच कर ज्ञान, भक्ति और प्रेम का अलख जगाया था और जाति तथा धर्म के भेद भाव को मिटाकर उन्हों ने 'एकेश्वर वाद' और विराट मानव धर्म की स्थापना की थी। ये लोग किसी एक प्रान्त के न होकर समस्त भारत के थे। इसी संदर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि भोगोलिक सीमाओं को इन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। ये तो संस्कृति के जंगम तीर्थ थे, जिनका कार्य विविधता में एकता का संस्थापन था। 15वीं शदी के पश्चात् धर्म के नाम पर बढ़ते हुए अनाचारों का दमन कर सच्चाई की राह पर चलना इन्हीं सन्तों ने सिखाया। ये अपने युग के सबसे समर्थ सांस्कृतिक नेता थे। संस्कृति के क्षेत्र में इनकी उपलब्धियाँ निम्नानुसार हैं।

1. मानव धर्म की प्रतिष्ठा तथा ज्ञान का व्यापक प्रसार।
2. धर्म तथा ज्ञान की स्पष्ट एवं संतुलित चर्चा।
3. परम्परागत मान्यताओं के प्रति विद्रोह की भावना अथवा सामाजिक चेतना।
4. भौतिक जीवन में आध्यात्मिक क्रान्ति।
5. राष्ट्रीय जागरता। 6. असाम्प्रदायिकता।

1. डा. अम्बाशंकर नागर, गु. हि. स. पृ. 23।

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति की दृष्टि से सन्तों की देन का सम्यक विहंगावलोकन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुजरात की सन्त–परम्परा उत्तर भारत की ही एक कड़ी है तथा गुजराती सन्तों की हिन्दी वाणी के माध्यम से व्यक्त, ऐहिक एवं पारलौकिक सत्यों की अभिव्यक्ति अखिल भारतीय सन्त काव्य की अक्षय–निधि है। सारांशतः गुजरात के सन्तों की यह देन मात्र भाषा के क्षेत्र में ही महत्वपूर्ण नहीं, बल्कि विचारों में विशेष समझौता वादी, दर्शन में विशेष वेदान्तिक, संस्कृति के क्षेत्र में व्यापक तथा साहित्य के क्षेत्र में नवीन काव्यरुपों प्रतीकों एवं कल्पनाओं से परिपूर्ण हैं।

1:— ध्यान मूल गुरु मूर्ति पूजा मूल गुरु पादुका।
मन्त्र मूलं गुरु वाक्यं मोक्ष मूलं गुरु कृपा।।

2:— गुरुर्ब्रह्मा गुर्रुविष्णू गुर्रु देवो महेश्वरः।
गुर्रु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

3:— अखंड मंगलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शित येन, तस्मै श्री गुरुवेः नमः।।

भावार्थः—

जो सर्व व्यापक सत्ता अखंड रुप से चराचर जगत में व्याप्त है उस परमपद का जो दिग्दर्शन कराते है ऐसे श्री गुरु महराज जी के लिए नमस्कार है ।

4:— एकं नित्यं तिमलमचलं सर्वधी साक्षिभूतम्।
भागतीति त्रिगुण रहितं सद्गुरु तं नमामि।।

भावार्थः—

जो एक है नित्य है विमल स्वरुप है , अचल है समस्त में अतीत है उन सद्गुरु देव को मै नमस्कार करता हूँ।

5:— बन्दें बोध्यम् नित्यं गुरु शंर रुपिणम्।
यमाश्रितो हि वाक्योपि चन्द्रा सवर्त्र बन्धते।।

भावार्थः—

ज्ञानमय नित्य स्वरुप शंकर रुपी श्री गुरु महाराज जी की मै वन्दना करता हूँ । जिनका आश्रय पाकर तेंदुआ भी सर्वत्र बन्दनीय हो जाता है ।

6:— अज्ञान तमिराधकारस्य ज्ञानाज्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं देन तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

भावार्थः—

जो अपने ज्ञानाज्जनन की सिलाई द्वारा महामोह रुपी अज्ञान के परदे

को हटाकर तृतीय नेत्र खोल देते है ऐसे गुरु महाराज जी के लिये नमस्कार है।

7:— मूक होई वाचल, पंगु चढ़ई गिरिवर गहन।
जागु कृपा ओ दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन।।

भावार्थः— जिनकी कृपा कटाक्ष से गूंगा मनुष्य अधिक सुंदर बोलने वाला हो जाता है औश्र लंगड़ा लेला पर्वत—शिखर पर चढ़ जाता है । वे कलियुग में सब कु संस्कारो को जला डालने वाले महाराज जी मुझ पर द्रवित होकर दया करें।

बन्दौ गुरु पद कंज कृपा सिंधु रा रुप हरि।
महामोह मन पुंज जुास वचन रवि कर निकर।।

श्री गुरु चरण सरोज रज , बंदति मै कर जोरि।
विधन मिटै प्रग्टै विभो, होय विमल मत मोरि।।

बंदौ चरण सरोज गुरु, मुदमंगल आकार।
जेहि सेवत नर होत है भव सागर के पार।।

गुरु के सुमिरन मात्र से नाशत विघ्न अनंत।
ताते सर्वारम्भ में ध्यावत है सब संत।।

औगुन हारा गुन नहीं, मन का बड़ा कठोर।
ऐसे समरथ सद्गुरु तीहि लगावै ठौर।।

तुम तो समर्थ साइया, दृढ करि पकड़ो बॉह।
धुर ही ले पहुॅचाईयो, जानि छॉड़यो मग मॉहि।।

सुरत करो मेरे साईया, हम है भव जल माहिं।
आप ही बहि जायेगे, जो नहीं पकड़ो बांह।।

घट समुद्र लख ना पड़े, उठे लहर अपार।
दिल' दरिया' समरथ बिना, कौन उतारे पार।।

औगुन किये तो बहु किये , करतन मानी हार।
भावे बंदा बखशिये भावे गर्दन मार।।

मै अपराधी जन्म का , नख सिख बिकार।
तुम दाता दुःख भंजना मेरी करो संभार।।

मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन में ढ़ंग।
न जानू उस पींव सो, क्यों कर रहसी संगा।

क्या मुख ले बिनती करु लाज आवत है मोहि।
तुम देखत औगुन करुँ कैसे भाउँ तोहि।।

भक्ति दान मोहि दीजिये, गुरु देवन के देवा।
और नहीं कुछ चाहिए, निश दिन तुम्हरी सेव।।

बार बार बर मॉगउ हरषि देहु श्री संग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सत्संग।।

नाथ मोहि न विसारियो , लाख लोग मिल जाहिं।
मुझसे आपको बहुत है , आप से मुढको नाहि।।

जो अबके स्वामी मिलें, सब दुरुख आखूँ रोय।
चरणौ ऊपर शीश धरुँ कहूँ सो कहना होय।।

बिन सद्गुरु उपदेश सुर नर मुनि नहीं निस्तरै।
ब्रह्म विष्णू महेश, और सकल की मन को गनै।।

साहिब तुम ही दयाल हो, तुम लगी मेरी दौर।
जैसे काम जहाज को, सूझे और न ठौर।।

सदगुरु बड़े दयाल है , संतन के आधार।
भवसागरहिं अथाह से , खेई उतारे पार।।

सॉचा समरथ गुरु मिला, तिन तन दिया बताए।
दादू मोट महा बली, घट घृत मथिकर खाई।।

सुंदर सतगुरु ब्रह्ममय पर सिख की समदन्टि।
सूची और न देखई, देखे दपैन दृष्टि।।

किताबः— संत परंपरा और साहित्य में संतों का आध्यात्मिक दृष्टि कोंण।

संत तथा विद्वान में महान अंतर है । ऐसा हम मानते है । विद्वान अथवा तत्वज्ञ वह व्यक्ति है जिसकी अनुभूतियों दूसरों की अनुभुतियों पर अविलंबित होती है , जो पर —प्रत्यक्ष पर स्वप्रत्यक्ष की इमारत खड़ी करता है और उसके ऊपर नहीं उठ सकता है । युक्तियों और तथ्यों के आधार पर इस

प्रकार गृहीत स्वप्रत्क्ष को वह समझने का प्रयास अवश्य करता है । परंतु उससे वह आगे नही बढ़ सकता है । संत अपनी अनुभूतिओं के आधार पर इस तथ्य का निर्णय करने में समर्थ होताहै । वह सच्चे अर्थ में ज्ञान होता है । ज्ञान की वास्तविक अर्थ पुस्तकस्थ विद्याओं का शास्त्रीय परिचय नहीं है । ग्रंथों से उत्पन्न होने वाला ज्ञान सर्वथा परोक्ष ज्ञान है । और वह वस्तु तत्व की समीक्षा के लिये उतना समर्थ नहीं होता है जितना अपरोक्ष ज्ञान। तर्क के द्वारा उपलब्ध ज्ञान परनुभूति ही होता है और यह ज्ञान अपनी अनुभूति बने बिना कथमपि उपादेय नहीं होता । ज्योति स्वरुप ब्रह्म की सत्ता का सबसे प्रबल प्रमाण क्या है ? स्वानुभूति अपना वैयक्तिक अनुभव । इसी लिये भर्तृहरि ने स्वानुभूति को भगवान के अस्तित्व का ' एकमात्र' सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना है :—

स्वानुभूत्येक मानायः नमः शान्ताय तेजसे।

उस पुरुष की सत्ता का प्रबलतम प्रमाण अपना ही अनुभव हो सकता है दूसरों के अुनभव पर आश्रित तथा निश्चित किया गया तथ्य कदापि पूर्ण प्रमाणिक एवं अकात्य नहीं हो सकता है ।

संतों का आग्रह सहानुभूति के लिए है । उपनिषदों की परंपरा में साधन प्रकिया के तीन सोपान है , जिसमें होकर साधक को अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँचना होता है । एक भी सोपान की कमी होने पर साधक का लक्ष्य कभी सिद्ध नही हो सकता है । इन तीनो सोपानो का संकेत महर्षि याज्ञवल्क्य के इस महनीय वाक्य में आता है :—

" आत्मा वा परे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितत्यो मैत्रेयिं"

श्रवण मनन तथा निदि ध्यासन की आत्मानु संधान के त्रिविध साधन है। शास्त्र के वचन अथवा गुरु के उपदेशों को प्रथमतः सुनना चाहिए। (श्रवण) सुनकर उनपर तर्क के द्वारा विचार करना चाहिये विश्लेशण तथा समीक्षण की यह दशा तब होती है जब पर—प्रत्यक्ष की सत्यता हम प्रमाणों से जॉचते है और उनके सत्य सिद्ध होने पर उसमें हमारा दृढ विश्वास होता है । (मनन) परंतु

इतने से ही कार्य सिद्धि नहीं हो जाती है । विद्वान प्रायः यहीं ठहर जाता है और मनन में ही मन लगाकर उसे ही जीवन का लक्ष्य बना देता है । परंतु तृतीय और अंतिम साधन, निदिध्यासन, के अभाव में वह लक्ष्य तक यर्थाथतः नहीं पहुँच सकता । निदिध्यासन केवल बौद्धिक चिंतन का अभिधान नही है । इसमें योगा का भी पर्याप्त सहयोग होता है । योग की प्रकिया द्वारा प्रबुद्ध मन ही श्रवण द्वारा साधरणतः ज्ञात और मनन द्वारा निश्चित तथ्यों के चिंतन में कृतकार्य होता है और उसे साधक के जीवन में उतारने में समर्थ होता है । इन तीनों साधनो की पुष्टि किसी साधक को 'संत' बनाने में सफल होती है । यही ठीक है कि अनेक संतो के जीवन निर्माण में आरंभ के दोनों सोपान साधरणतयः लक्षित नहीं होते है ऐसे संतो को हम निदिध्यासन के अभ्यास में ही विशेषतः जागरुक पाते है परंतु उपर्युक्त प्रथम दोनों सोपानो की सत्ता की हम अपलाप कथमपि नही कर सकते है ।

ईसाई धर्मावलम्बी , जो अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सतत प्रयत्नशील तथा जागरुक 'कियाशील' होने पर भी अनेक बौद्धिक संशय–स्थलों को कठिन परिश्रम से पार करते है और मन की अस्थिरता के कारण शुष्क तर्क के अन्धता मिस्त्र को दूर हटाने में गुरु की अनुकम्पा को दुढ साधन बनाते है , उनके इस संशयालु ज्ञान की तमिस्त्र ईसाई ग्रंथों में 'Dark night of the Saul' (जीव की श्यामा रजनी) के नाम से बहुशः विश्रुत है । भारतीय संतों के जीवन में भी यह दशा देखने को मिलती है परंतु वास्तविक साधक इस रजनी को अपने गुरु की कृपा या अपनी प्रतिभा से सधः पार कर अपने आप को ज्ञान–लोक में प्रतिष्ठित कर लेता है , जहाँ वह 'शान्त ज्योति' का दर्शन कर अपने को कृत कार्य बनाता है । जहां सा उसकी कथमपि प्रच्छुति नहीं होती है 2:– पं. उपाध्याय जी के अनुसारः–

तर्क बुद्धि तथा प्रतिभा का परस्परिक भेद नितान्त स्पष्ट है । विद्वान में तर्क बुद्धि का प्राबल्य होता है । संत में प्रतिभा का विलास । विद्वान तर्क के प्रकाश में जिन तत्वों का अनुसंधान करता है , संत प्रतिभा के आलोक में उनका

साक्षात्कार करता है । विद्वानो का उपदेश अनेक अवसरो पर इसी लिए प्रभावशाली नहीं होता है कि वह पर प्रत्यक्ष के ऊपर विशेष रुप से आधारित रहता है । इसके विपरीत संतो का उपदेश स्वप्रत्यक्ष के ऊपर आश्रित होने के कारण अधिक प्रभविष्णु होता है । संत साहित्य में यह पार्थक्य एक रोचक दृष्टान्त के द्वारा समझाया गया है । संतो की अनुभूतवाणी है कि हरिण को देख कर भूकने वाला कुत्ता एक ही होता है और दूसरे कुत्ते तो उस कुत्ते की आवाज सुनकर ही भूकने लगते है , वे स्वयं हिरण को देखते नहीं , बल्कि उस कुत्ते की आवाज में अपनी आवाज मिलाकर जोर से चिल्लाने लगते है यह आभा कुछ थोड़ी से अवश्य है , परंतु है एकदम यर्थाथ।

तत्व को देचाने वाले एक ही दो होते है परंतु उनके विवरण और व्याख्यान को पढ़ सुन कर हजारों लोग उन्हीं वाक्यों का बिना समझे बूझे प्रयोग करते लगते है ।

पश्चिमी दार्शनिको की व्याख्या के अनुसार प्रख्यात यूरोपीय तत्वज्ञ वर्गसॉ ने बुद्धि (इराटेलिजेंस) तथा प्रतिभा (इराटयुशन) का भेद बताते हुए कहा है कि तर्क जन्य ज्ञान का पक्ष –विपक्ष के द्वैत का अतिकमणी नहीं कर सकता । तार्किक ज्ञान की प्रकिया में हम मण्डन 'थेसिस' तथा खण्डन ' ऐंटी थेसिस' के माध्म द्वारा ही सिद्धॉत (सिंथेसिस) पर पहुॅचते है फलतः बुद्धि के स्तर पर विकल्पो का सामना करना ही पड़ता है । परंतु प्रतिभा के द्वारा हम उस अवस्था पर पहुॅच जाते है जहॉ तर्क वितर्क के लिए स्थान नहीं होता और मनो विद्युत प्रकाश के द्वारा सकल मानस तथ्झा मानव वृत्तियॉ एक क्षण में आलोक्ति और प्रकाशित हो उठती है इसमें प्रथम वृत्ति का अधिकारी होता है शास्त्र और दूसरी वृत्ति का साधक संत होता है । भरत मनीषि तत्वज्ञत प्रोफेसर रानाडे ने भी इनका पार्थ्व बड़े ढ़ंग से दिखलाया है " तर्क–साध्य परोक्षानुमूति तथा प्रतिमाजन्य अपरोक्षानूभूति में वही अन्तर होता है जो किसी अनुभव के विवरण तथा उस अनुभव के के उपयोग के बीच में है अथवा जो

ज्ञान और सत्ता के बीच में विद्यमान होता है फलतः इन दोनो वृत्तियों का तथा तज्जन्य अधिकारियों के पार्थक्य का यह संक्षिप्त विवरण ध्यान देने योग्य है ।

3:— सहानुभूति और सदाचार संत जीवन के मुख्य आधार है । तार्किक बुद्धि के द्वारा शास्त्र किसी तथ्य का केवल ऊहापोह करता है , किन्तु इस ज्ञान को अपने जीवन में उतारना वह नही जानता संत उस ज्ञान को अपने जीवन का दर्पण बनाता है । अपना समग्र आचरण उसी आधार पर खड़ा करता है । संतों की वाणी में सदाचरण का नाम है 'रहनी' (जीवन बिताने का प्रकार)

संत टेकमन के मतानुसारः—

भजन करे सो बेटा हमारा, ज्ञान पढ़े सो नाती।
रहनी रहै से गुरु हमारा, हम रहनी के साथी।।

" भजन करने वाला बेटा है , पढ़ने वाला ममेरा नाती, । रहनी रहने वाला मेरा गुरु है मै रहनी का साथी हूँ। " इस संत की दृष्टि में ज्ञान से बढ़कर है भजन और भजन से बढ़कर रहनी (सदाचरण) सदाचारी व्यक्ति सीनी होता है , क्योंकि संत रहनी का संगी सखा होता है । संतो की दृष्टि में 'कथनी' से बड़ा दर्जा है 'करनी' का । संत शुष्क ज्ञान को जीवन के लिये अनुपादेय मानता है वह राम भक्ति के साथ ज्ञान और विवेक के मंजुल सामरस्य का पक्षपाती होता है ज्ञान और भक्ति का समन्वय सोने में सुहागा के समान होता है और इस समन्वय से युक्त साधक उस कमाल के समान द्युतिमान होता है जो निर्मल जल में विकसित है साथ ही नाना सुंदर रंगों से रचित है ।

किनाराम के मन्तव्यनुसारः—

सोभित ज्ञान विवेक जुत रामभक्ति के संग।
'राम किना' जिमि कमल जानु कुल्यो कमल सुरंग।।

संत मत में इसी कारण गुरु शिक्षा के लिए बड़ा आग्रह है गुरु की अनुकम्पा के बिना आध्यात्मिक तथ्यों की ग्रंथियॉ खुलती ही नहीं आध्यात्म का मार्ग छुरे की धार के समान दुर्गम और कठिन है :—

तर तरवारि की धार पै धावनो है ।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया।

दूर्ग पथस्तत् कवयो वदन्ति।।

अतएव उस मार्ग पर चलने वाली ही उसकी कठिनाईयों को भली भॉति जान सकता है और अन्य पथिकों को मार्ग दर्शन करा सकता है । 'प्रोक्तान्यनेनैव शुज्ञानाय प्रेष्ठ ' अर्थात ज्ञानी गुरु के द्वारा उपनिष्ट पुरुष ही सुंदर ज्ञान को प्राप्त कर सकता है अन्यथा नहीं।

श्री मद् भागवद् में गुरु तत्व की व्याख्या में 'अकर्णाधार वाणिक' की कड़ी संदर तथा उपयुक्त उपमा दी गई है गुरु के चरण से पराड. मुख व्यक्ति उसी प्रकार भग्न–मनोरथ होता है जिस प्रकार समुद्र में कर्णधार के बिना यात्रा करने वाले व्यापारी को विफल मनोरथ होना पड़ता है :–

व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणाम्।

वणिज इवाज संतकृतकर्णधरा जलधौ।।3।।

इसी परंपरा का अनुसरण करते हुए संतो ने जीवन के विकास में गुरु तत्व का अतिशय महत्व माना है । पलटूदास ने बड़े ही सुंदर शब्दों में गुरु से दीक्षा लेने तथा तदनुसार जीवन यापन करने की बात कही है।

धुबिया फिर जाएगा चाादर लीजै धोय।

चादर लीजै धोय, मल है बहुत सम्पनी।

चल सदगुरु के घाट, भरा जहँ निर्मल पानी।।

कबीर दास ने भी गुरु की महिमा के विषय में बड़े ही महत्व के बातें बताई है । वे कहते है कि मानव शरीर विषैली लता है और गुरु अमृत का खान है । इस शरीर को नित्य तथा सुखमय बनाने की क्षमता गुरु में ही मिल जाए तो यह सौदा सस्ता समझो–

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिए तो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।

गुरु उपाय तथा उदेय दोनों ही होता है गुरु वही है जो स्वयं अपरोक्ष क्षान का लाभ कर तथा परम स्वरुप में प्रतिष्ठत होकर अनुग्रह शक्ति के संचार द्वारा दूसरों को स्वरुप –प्रप्ति के पथ पर चलने में सहायता पहुँचाता है । इसी लिये वस्तुतः भगवान् ही गुरु है । वे जीव के आत्म स्वरुप और परम स्वरुप के ज्ञाता है । यह तो अन्तिम दशा है प्रथम अवस्था में मनुष्यादि की जिस देह का आश्रय कर उस गुरु भक्ति का प्रकाश होता है , उन्हें भी गुरु रुप में ग्रहण किया जाता है इसी लिये भी लक्ष्य की प्रप्ति का उपाय होने के कारण गुरु को उपाय कहा जाता है । इस उपाय के द्वारा जिस स्वरुप को प्राप्त किया जाता है वह भी गुरु है :–

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। इसी लिए गुरु को उपयोगी भी कहा गया है । गुरु के संबन्ध में संतों के निरान्त आग्रह का यही रहस्य है। कबीर दास ने गोविंद से गुरु के पद की जो महानीयता बताई है उसका यही कारण है – दोनों में परमार्थतः कोई भेद नहीं है ।

संतो के जीवन से हमें संतुलित जीवन यापन की विधि सीखी है । संत का जीवन एकांगी नहीं होता है । वह अपने जीवन में स्वार्थ तथा परमार्थ का लोक व्यवहार एवं सिद्धांत का अनुपम मिलन दिखाता नहीं वह समाज पर बोझ नही बनता बल्कि अपनी शिक्षा से खास कर अपने उदाहरणों से लोगो के सामने व्यवहारिक दर्शन का आदर्श उपस्थित करता है । संत भगवान को कहीं बाहर खोजने नहीं जाता। उसकी दृष्टि में :–

" फूल में है ज्यें बास, काठ में आम छिपानीं।
दूध में है घी रहै, नीर घट मॉहि लुकानी।।"

घट–घट में प्रियतम की छवि की झॉंकी मिलती है । अतएव वह संसार के प्राणियो के साथ मैत्री का भाव रखते हुये उसी प्यारे का नूर हर जगह

देखता है ।

"संतों के इस अतिशय व्यवहारिक दृष्टि कोण को अपनाने की आज की भटकी हूई युवा पीढ़ी को आवश्यकता है तभी कहीं जाकर इस आधुनिक युग की रफतार में अग्रसर हो रही युग पीढ़ी को इस भ्रष्टाचार नीति के अंधकार में कही एक चिराग की लौ थरथराती नज़र आ सकती है जिसे आज के युवा वर्ग ने ही संतों के भारतीय संस्कृति के अग्रिम महापुरुषों के पद्चिन्हों पर चल कर ही उस लौ को इस भ्रष्ट का लिभ पूर्ण आंधी में भी बुझने नहीं देता है ।

और प्रेम भजन, नाम का स्मरण, भगवान के दिव्य रुप की झाँकी जगत के प्राणियों के बीच हुदय के भीतर खोजना बाहरी आडम्बरो का तिरस्कार कर हृदय में प्रेम की ज्योति जगाना। इन महत्वपूर्ण संत जीवन के संकेतों को ग्रहण करने की आज की इस भ्रष्ट नीति में अत्यंत महत्वपूर्ण आवश्यकता है।